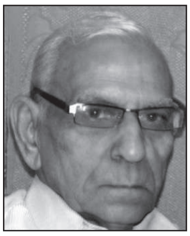

गोपीनाथ महान्ती और आदिवासी समाज

विशेष संदर्भः- 'परजा'

मधुरेश

गोपीनाथ महान्ती का जन्म 20 अप्रैल सन् 1914 को उड़ीसा के कटक जिले के नागवाली गांव में हुआ था जो कटक के मूल शहर से कोई सात-आठ मील की दूरी पर स्थित है। उनके पिता प्रतिष्ठित जमींदार होने के साथ ही सिविल इंजीनियर भी थे। स्वाधीनता और सामाजिक सुधार संबंधी आंदोलनों के प्रभाव में आकर उन्होंने अपनी सरकारी नौकरी छोड़ दी थी। उन्होंने गांव में एक पाठशाला खोली थी जिसमें कैसे ही जात-पात और धर्म-सम्प्रदाय के बंधन से मुक्त हर जाति-वर्ग के गरीब बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था की गई थी। छीजती हुई उत्कल संस्कृति की पुर्नप्रतिष्ठा उनका मुख्य सामाजिक सांस्कृतिक कार्य भार था।

पिता के ये संस्कार गोपीनाथ महान्ती को भी विरासत में मिले थे। सन् 1939 में जब वे एक प्रशासनिक अधिकारी के रूप में ब्रिटिश सरकार की राजस्व-सेवा में आए उनकी आयु पच्चीस वर्ष थी। राजस्व विभाग में ही विभिन्न पदों पर रहते हुए, पचपन वर्ष की आयु में सन् 1969 में वे सेवा निवृत्त हुए। अपने सेवा-काल में उन्हें उड़ीसा के विभिन्न जन-जातीय क्षेत्रों में रहने और काम करने का अवसर मिला। कोरापुट, खोंडमहल, कालाहांडी आदि जिलों में अपनी नियुक्ति के दौरान उन्हें वहां के आदिवासी जनजातीय समाज बहुत निकटता और अंगरंगता से देखने का अवसर मिला। बेशक उस समाज के लिए वे एक बाहरी व्यक्ति थे, लेकिन उन्होंने उस समाज का 'हिस्सा' बन कर उस समाज को देखा और अपनी रचनाओं में उसका अंकन किया। आज हिंदी में दलित आंदोलन की भाषा में वह उनका 'स्वानुभूत' न होकर उनकी सहानुभूति का ही हिस्सा था। इस समाज का उनका अंकन इसलिए विश्वसनीय और प्रामाणिक बन सका है क्योंकि आदिवासी जनजातीय समाज के अपने दृष्टि-बिंदु से किया गया अंकन है। उसमें लेखक ने अपने को अपने मध्यवर्गीय समाज और शिक्षित शहरी बुद्धिजीवी वाले आग्रह के आरोपण से बचाया है।

यही कारण है कि गोपीनाथ महान्ती आदिवासी समाज के प्रामाणिक एवं विश्वसनीय भाष्यकार के रूप में जाने जाते हैं। इस आदिवासी जनजातीय समाज पर केंद्रित उनके दो बहुत महत्वपूर्ण उपन्यास हैं - 'परजा'(1948) और 'अमृत संतान' (1949) ! 'परजा' वस्तुतः इसी नाम की जनजाति को लेकर लिखा गया उपन्यास है जो सहिष्णुता और धैर्य की अपनी जीवन-शैली और जीवन-दर्शन से बाहर निकलकर प्रतिशोध और विद्रोह का आख्यान रचती है। आदिवासी समाज की गाथा होकर भी यह एक तरह से समूची

शोषित-वंचित मानव जाति के आख्यान का रूप ले लेती है। इसके विपरीत उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'अमृत संतान' सहिष्णुता और निरपेक्ष अंकन का उदाहरण है, भले ही वह 'परजा' की अपेक्षा कलात्मक प्रभाव की दृष्टि से अधिक सफल हो।

लेकिन एक लेखक के रूप में गोपीनाथ महान्ती इसी समाज तक सीमित नहीं हैं। इस समाज से बाहर आकर शहरी परिवेश पर खासतौर से नौकरशाही केन्द्र में रखकर उन्होंने 'दाना पानी' लिखा तो मानव-मन के गोपन रहस्यों के अंकन की दृष्टि से उनके 'राहुर छाया' और 'लय-विलय' जैसे उपन्यासों का उल्लेख किया जा सकता है। पिता से स्वाधीनता संघर्ष और सांस्कृतिक पुर्नप्रतिष्ठा की जो दृष्टि उन्हें मिली थी, उड़ीसा के ग्राम-जीवन की पृष्ठभूमि में, गांधीवादी जीवन-मूल्यों को आधार बनाकर, उन्होंने 'माटी मटाल' (1964) जैसा महाकाव्यात्मक उपन्यास लिखा जिसपर उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। ग्राम केंद्रित रचना होने पर भी यह वस्तुतः समूचे उड़ीसा का प्रतिनिधि मूलक उपन्यास है। यह स्वाधीन भारत में राष्ट्रीय पुनर्निमाण की महागाथा होने के साथ ही म्रियमाण उत्कल संस्कृति की पुर्नप्रतिष्ठा का आख्यान भी है।

कदाचित अपने रचना-संसार के वैविध्य और व्यापकता के कारण ही 'परजा' और 'अमृत संतान' जैसे अंचल प्रधान उपन्यासों के बावजूद गोपीनाथ महान्ती अपने को आंचलिक उपान्यासकार नहीं मानते जबकि भारतीय उपन्यास में आंचलिकता संबंधी आदोलन के प्रसंग में 'अमृत संतान' की स्थिति बहुत कुछ एक प्रस्थान बिंदु जैसी है। एक साक्षात्कार में उन्होंने इस बात को स्वीकार किया है कि उन्हें इस बात का कोई परिताप नहीं है कि वे अपनी आत्मकथा पूरी न कर सके। वे विविध रूपों में हाड़-मांस के अपने जीवन्त और वास्तविक पात्रों में मौजूद हैं। कोई और कैसी भी रचना कल्पना के अभाव में नहीं रची जा सकती, लेकिन उनके रचना संसार में रमणीय कल्पना-विलास के मूल में एक सच्चा और वास्तविक जीवन सब कहीं अपनी उपस्थिति का आभास कराता है। अपने जीवनानुभवों और वास्तविक घटना- प्रसंगों को ही विभिन्न रूपों में ढालकर उन्होंने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है।

अनेक कारणों से आदिवासी जीवन पर लिखा अपना उपन्यास 'परजा' गोपीनाथ महान्ती को विशेष प्रिय था। उन्हें इसका मलाल भी रहा कि उनके जीवन काल में जहां उनके 'अमृत संतान' 'दाना-पानी' और 'माटी महाल' का अनुवाद हिंदी में हुआ,'परजा' का नहीं हुआ। उनके निधन के प्रायः सोलह वर्ष बाद उसका अनुवाद हुआ और उन कारणों का अनुमान लगा पाने में सहायता मिली कि आखिर वह क्यों लेखक को पसंद था। इसे लिखने का विचार उनके दिमाग में तब आया जब वे आदिवासी बहुल जिला कोरापुट में नियुक्त थे। अपने एक माहतैत दारोगा से उन्होंने सुना कि उस क्षेत्र के एक परजा आदिवासी ने अपनी जमीन के लिए उस क्षेत्र के जमींदार की हत्या कर दी है जिसके यहां वह और उसका जवान बेटा बधुंआ मजदूर की तरह काम करते थे। इस सुनी हुई घटना को पहले उन्होंने एक कहानी के रूप में लिखने का मन बनाया। कहानी लिखे जाने के दौरान उन्हें लगा कि कहानी में वस्तुतः वह सब आ नहीं पा रहा है जो जमीन को आदिवासी समाज के भावनात्मक लगाव को स्पष्ट कर सके। इसी का परिणाम फिर 'परजा' के रूप में सामने आया। परजा समुदाय के शोषित जीवन की कहानी, अपने सारे आंचलिक ब्यौरों के बावजूद, समूची शोषित मानव जाति का आख्यान कैसे बनती है, यही वस्तुतः 'परजा' का मुख्य आकर्षण है। परजा समुदाय की हद दर्जे की सहन शीलता एक गहरे विद्रोह में बदल जाती है, जिसकी परिणति अंततः षड्यंत्र पूर्वक जमीन हड़पने वाले मालिक की हत्या में होती है। आंचलिकता से समूची मानव जाति की गाथा बनने के आग्रह में ही वस्तुतः वे सूत्र भी छिपे हैं जिनके कारण गोपीनाथ महान्ती अपने को आंचलिक लेखक माने जाने का सिद्धान्ततः विरोध करते थे।

उपन्यासों के अतिरिक्त महान्ती की कम से कम दो कहानियां 'टड्पा' और 'बघई'- ऐसी हैं जिनसे उनके द्वारा अंकित आदिवासी समाज के प्रति उनकी लेखकीय दृष्टि और कार्य-शैली को समझने में सहायता मिलती है। 'टड्पा' उस दौर की कहानी है जब वे कन्ध बहुल क्षेत्र में नियुक्त थे। वहीं टड्पा नामक एक कन्ध युवक से उनकी भेंट तब होती है जब वे अपने कुछ सहयोगियों और नृतत्वविदों के साथ जंगलों और पहाड़ों में घूम रहे थे। तड्पा से मिलकर और उसकी बातें सुनकर सामाजिक एवं सांस्कृतिक समुच्चय की बातों की व्यर्थता समझने में उन्हें सहायता मिली। नारी और प्रकृति के प्रति तड्पा की अपनी दृष्टि थी जो शहरी मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों से पूरी तरह भिन्न होने के साथ ही आदिवासी समुदाय की प्रतिनिधि दृष्टि भी थी। हजारों वर्षो की अवधि में भी उसमें कोई बदलाव न आया है और न ही कोई बदलाव इस समुदाय को स्वीकार्य है। स्त्री को वह युवक तड्पा, सभी आदिवासियों की तरह धांगड़ी छोकरी, मां, धरती आदि के रूपों में देखता है और उसके प्रति आवेग का अनुभव करता है। प्रकृति-जंगल, पहाड़ और उनमें रहने वाले वन्यजीव उनके जीवन का अभिन्न अंग है। इसके बिना इस जीवन की कल्पना ही दुष्कर है।

महान्ती की 'बघई' देश में लगी इमरजेंसी की पृष्ठभूमि में लिखी

गई कहानी है। आदिवासी जीवन और समाज महान्ती पर किस तरह हावी था, और कैसे वे उसका 'हिस्सा' थे 'बघई' इसे कलात्मक ढंग से स्पष्ट करती है। कोरापुट की पर्वत श्रेणियों पर रहने वाले आदिवासियों के जीवन में बाघ या बाघिन की उन्मत्तता के चलते विचित्र भय का वातावरण बना रहता है। सुरक्षा की दृष्टि से शाम से ही घरों के दरवाजे बंद हो जाते हैं। 'बघई' में इमरजेंसी की कल्पना जनतंत्र की हत्या करने वाली एक ऐसी ही आतंककारी बाघिन के रूप में की गई है जो भय और असुरक्षा के कारण आदमी का जीना दूभर कर देती है। बाघिन की व्यंजना कहानी में दूर तक जाती है।

आज हिंदी के दलित आंदोलन के हिसाब से गोपीनाथ महान्ती आदिवासी समाज के लिए एक बाहरी व्यक्ति थे लेकिन आदिवासी जीवन को जैसी समग्रता में कैसे भी मध्यवर्गीय घालमेल के बिना सचमुच अपने उस समाज का एक 'हिस्सा' बनाकर उन्होंने प्रस्तुत किया वैसा कोई दूसरा उदाहरण आज समूचे भारतीय सहित्य में उपलब्ध नहीं हैं। बांग्ला लेखिका महाश्वेता देवी ने भी आदिवासियों पर बहुत लिखा है। उनके बीच रहकर रचनात्मक और राजनीतिक काम करने के लिए भी वे जानी जाती हैं। उन्हें भी भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिल चुका है। बिरसा मुंडा के जीवन और कार्यों पर केंद्रित उनका उपन्यास 'जंगल के दावेदार' पर्याप्त लोकप्रिय हुआ है। लेकिन मुंडा समाज के भूगोल, उनके रस्म-रिवाज और उनकी सांस्कृतिक दृष्टि को आधार बनाकर वीर भारत तलवार ने इस उपन्यास पर कठोर टिप्पणी की है। उनका आरोप है कि कथा-भूमि में आए भौगोलिक क्षेत्रों के नाम गलत दिए हैं। जंगल की मां के रूप में की गई कल्पना मुंडा समाज की सांस्कृतिक दृष्टि के विरुद्ध है। वीर भारत तलवार इसलिए भी महाश्वेता देवी की आलोचना करते हैं कि अपने आदिवासी पात्रों के मुंह में उन्होंने अपने वामंपथी उच्छवासों को तो रखा ही है, अधिकांशतः वे डॉ. सुरेश सिंह के शोध अध्ययन के निष्कर्षों को अपने संवादों के रूप में प्रयुक्त करती हैं। उनकी यह आलोचना किसी विस्तृत आलेख के रूप में न होकर उनकी डायरी में उल्लिखित नोट्स के रूप में है। इस उपन्यास के प्रसंग में महाश्वेता देवी पर उनकी टिप्पणी है, 'लेखिका मुंडाओं के सांस्कृतिक मानस से बिल्कुल अनजान लगती है।' (झारखण्ड के आदिवासियों के बीच : एक एक्टिविस्ट के नोट्स, संस्करण 2008 पृ.584)

वीर भारत तलवार महाश्वेता देवी के इस रचनात्मक स्खलन को वस्तुतः उनकी कार्य-शैली का परिणाम मानते हैं। वे कभी आदिवासी जीवन का हिस्सा नहीं बन सकीं। आदिवासी जीवन पर उन्होंने प्रभूत मात्रा में लिखकर ख्याति अर्जित की है। लेकिन उनका सामान्य तरीका यह है कि लिखने की तैयारी के दौरान वे उस क्षेत्र का दौरा करती हैं। वहां वे किसी धनाढ्य ग़ैर आदिवासी परिवार में ठहरती हैं जो उनकी सहायता करता है। फिर वे लिए गए नोट्स के आधार पर लिखती हैं। इसी कारण अंतरंगता से अधिक उस जीवन के प्रति उनमें प्रदर्शन और दिखाने की मात्रा अधिक है। अपनी अर्जित ख्याति को भुनाने की उनकी क्षमताएं भी उनका सहयोग करती हैं। इसी कारण जब भी मौका मिलता है वीर भारत तलवार उनके प्रसंग में तीखी और कठोर टिप्पणियां करते हैं। मीजो आदिवासियों पर लिखित श्री प्रकाश मिश्र के उपन्यास 'जहां बांस फूलते हैं' की समीक्षा में भी वे महाश्वेता देवी पर ऐसी ही टिप्पणी करते हुए लिखते हैं, 'लेकिन श्री प्रकाश मिश्र का यह उपन्यास बहुत प्रचारित बांग्ला लेखिका महाश्वेता देवी के 'आदिवासी प्रेम' को दर्शाने वाले साहित्य से कहीं ज्यादा गहरा और सच्चा है। ... आदिवासी समाज की सीमित और सतही जानकारी के बल पर अपना नाम कमाने वाली लेखिका की तुलना में उन्होंने कहीं ज्यादा विश्वसनीय कृति की रचना की है (पृ. 455)

गोपीनाथ महान्ती का उपन्यास 'परजा' धर्म दुवार घाटी के एक गांव सरसुपदर पर केंद्रित है। यह तीन जातियों के सिर्फ बाइस घरों की एक छोटी-सी बस्ती है। ये जातियां हैं- डोम साही, गदबा साही और परजा साही। उपन्यास में अंकित परिवार शुक्रू जानी का है जिसकी फरबाली सोंबारी को बाघ उठाकर ले गया था जब वह भालू गाड़ झरने पर एक सुबह साग-पत्ती तोड़ रही थी। उपन्यास में वह नहीं है लेकिन उसकी स्मृतियां हैं जो जब-तब शुक्रू के मन में कौंधती हैं और कभी कभार वह उसे सपने में भी देखता है। उसके परिवार में दो जवान बेटे हैं-मांडिया और टिकरा। इसी तरह दो जवान बेटियां भी हैं- जिली और विली। बूढ़ा शुक्रू अपने इसी परिवार में रोज मर्रा के कठिन संघर्ष के बीच जी रहा है। अभाव और अभिशाप उसका पीछा नहीं छोड़ते। इन दैनन्दिन अभावों एवं अभिशापों के बीच आदिवासी समाज में लोकोत्सवों और पर्वो का अपना आकर्षण है। ये पर्व और उत्सव अभावों की पपड़ाई घरती पर जैसे पानी के वे छीटें हैं जिनके पड़ने से एक सोंधी वास उठती और फैलती है।

परजा समाज में जवान लड़के-लड़कियां रात को अपने घरों में नहीं सोते। लड़कों के लिए 'घांगड़ा बसाघर' और लड़कियों के लिए 'घांगड़ी बसाघर'। स्वच्छन्दता नृत्य-गान और प्रेम-प्रसंग इस जीवन के स्थायी तत्व हैं। कंजोड़ी जिली की सहेली है जो उसके भाई मांडिया को चाहती है। इसी कारण सहेली अधिक ननद- भौजाई के भावी रिश्ते से उनके बीच हंसी -मजाक का नाता है। जिली बागला

को चाहती है। आदिवासी जीवन के इस आनंद और मौज-मस्ती के बीच ही यकायक शुक्रू- परिवार में सब उलट-पुलट हो जाता है। क्षेत्र में तैनात सरकारी अधिकारी- जोमन- द्वारा आदमी भेजकर शुक्र से जिली की फ़रमाइश की जाती है। जंगल से अवैध रूप से लकड़ी काटकर वह उसे कोठरी का लालच भी देता है जो वह अपने बेटे मांडिया के विवाह के बाद उसकी पत्नी के लिए बनाना चाहता रहा है। इस संदेश लेकर आये आदमी के हाथ ही वह शुक्रू को पिक्का पीने के लिए दो आना और दो पैसे भी भिजवाता है। शुक्रू को परेशान देख इसी समाज का संदेश वाहक काव उसे पिछले उदाहरण देता है। वह ढिंगना बाम्हन बड़ा अधिकारी जब आया था तो पिलीमनू के घर से प्रेम सुंदरी गई, जोहान के घर से गई, आली सान्दर के घर से गई। आखिर बड़े सरकारी अधिकारी को मना भी कैसे किया जायेगा ? शुक्रू द्वारा उसकी बात न माने जाने पर तीन महीने बाद वही अधिकारी दल-बल के साथ आकर पेड़ की अवैध कटान के जुर्म में उसे पकड़ कर अस्सी रुपये का जुर्माना लगा देता है। इसकी भरपाई न होने पर उसे जेल जाना होगा।

आदिवासियों के बीच यह कहावत आम हैः अरे मेघ, बाघ और अधिकारी। तीनों ही तो करें सदा बराबरी। शुक्रू की कोई नहीं सुनता। अधिकारी ने पेड़ काटने को कहकर स्वयं उससे पैसा लिया था लेकिन वह मुकर जाता है। शुक्रू के साथ उसके द्वारा किया जाने वाला यह व्यवहार कथा की पूरी धारणा को बदल देता है। आनंद और संतोष में जीता परिवार मुसीबतों और शोषण के दुष्चक्र में फंस जाता है। शुक्रू और उसका छोटा बेटा टिकरा सौ रुपये में साहूकार का 'गोती' यानी बंधुआ बनकर जुर्माना जमा करते हैं। शोषण सिर्फ साहूकार ही नहीं करता। प्रेमचन्द के 'गोदान' की तरह सरकारी तंत्र , साहूकार और दलाल किस्म के लोग इसमें बराबर के हिस्सेदार है। गांव का नायक, चालान और बारीकी जैसे बीच के लोग अधिकारी को सिर्फ पंद्रह रुपये देकर बाकी अपनी गांठ करते हैं। एक समय घोर हताशा की स्थिति में जब शुक्रू जुर्माना भरने के बजाय जेल जाने को तैयार होता है ये ही लोग उसे सामाजिक बदनामी का डर दिखाकर साहूकार से धन की व्यवस्था करवाते हैं। शुक्रू जब रुपया लेकर अधिकारी के मुंह पर मारने की बात करता है तरह-तरह का डर दिखाकर ये लोग उसे सीधे अधिकारी के पास नहीं जाने देते और सब कुछ खुद ही करते हैं।

बाद में पौष-पर्व के अवसर पर जो परजा समाज के लिए आनंद का विशेष पर्व है, शुक्रू जानी के बड़े बेटे मांडिया को भी मद रांघने के अपराध में पकड़ कर पचास रुपये का जुर्माना लगा दिया जाता है। उसकी अदायगी न होने पर पंद्रह दिन की जेल की व्यवस्था है। कोई उपाय न होने पर मांडिया भी उसी साहूकार का गोती बन जाता है।

आदिवासी समाज में इन सामान्य-सी घटनाओं के दूरगामी एवं त्रासद परिणामों का यथार्थ और विश्वसनीय अंकन किया है। परिवार के तीनों पुरुष सदस्यों के गोती बन जाने पर दो जवान लड़कियां असहाय और निराश्रित हो जाती हैं। कंजोड़ी ने मांडिया जानी से ब्याह करके गृहस्थी बसाने का सपना पाला था। इसमें विलम्ब का कारण यह था कि वह उसके रहने के लिए एक कोठरी बनाने की व्यवस्था कर रहा था। झूला में कंजोड़ी के बाप को देने को भी कुछ रुपये चाहिए। राह में जाने पर शुक्रू जानी का घर पड़ने पर कंजोड़ी के मन में एक हूक-सी उठती है। बरामदे में अकेली बिली उसे आते-जाते दिखाई देती है। रसोई की कोई व्यवस्था उसे दिखाई नहीं देती। छाती में उठी हूक के साथ उन कारणों का खुलासा होता है। जिनसे उसे इस ओर आता अच्छा नहीं लगता और वह दूसरे रास्ते से निकल जाती है, 'सब एक-एक कर याद आ रहा है। आज कितने दिन से यह घर सुन-सान पड़ा है। उदास और निस्पन्द ! इधर जाने पर हाथ हिलाकर बुलाने वाला कोई नहीं है। सामने पड़ने पर बड़ी-बड़ी आँखों से अनकहे मन की अनकही बात कहने के लिए मांडिया नहीं। हंसी करने के लिए टिकरा नहीं। रास्ते में चले जाओ, प्रसन्न, आशीष भरी निगाह से देख हाथ में कुदाल लिए घूमने वाला शुक्रू जानी नहीं। वे इस गॉव में आते हैं कभी-कभी, मगर बस्ती में घूमने को गोती के पास समय नहीं रहता। कौन कब आता-जाता है पता ही नहीं चलता। आज कितने दिन हो गए, उनकी बात गांव-गली में कहीं तो नहीं पड़ी। सांझ पहर खेत में सींगा बजता है। चांदनी में गांव के रास्ते पर नाच में धूल उड़ती है। खेत का काम होता है, घर का काम होता है। कोई कभी भूल से भी कहता नहीं - 'काम नहीं रुकेगा, शुक्रू जानी के घर पर कोई नहीं।' (परजा, पृ. 71)

बाप और भाइयों के बिना बस्ती और घर में जिली-बिली रहती हैं। वे पहाड़ की तितली तो हैं लेकिन पुरुष वाली हिम्मत उनमें नहीं हैं। पहाड़ी छोरी सोते-सोते दिन नहीं काटती। वह खेत में कमर कसकर मिट्टी खोदती, घर में खाना बनाती-पकाती है। संसार चलाती है। माथे पर पैसारा लेकर बाड़ी की फसल बेचकर नमक-मिरच और मरदों के लिए पिक्का खरीदने धूप-ही-धूप में हाट-हाट फिरती है। जिली-बिली किसके लिए और किसके सहारे यह सब करें ? माथे पर फूल खोंस जूड़ा बांधने और रंग-बिरंगी साड़ी करीने से लपेट कर, राह-बाट में मरद देख हंसी-मजाक करने का अवसर ही जैसे चुक गया है, 'इन दोनों बहनों के कल्पना के बने जादुई डंडे जैसे गुम

हो गए थे। उनकी लता पर फूल कम नहीं थे। पर नीचे से किसी ने शाख खींच ली हैं... (वही, पृ.75) संरक्षक मर्दो के बिना जीवन पर पड़ते प्रभाव को गोपीनाथ महान्ती छोटे-छोटे भावपूर्ण और विश्वसनीय चित्रों द्वारा अंकित करते हैं। यहां न विचार धारा का कोई आग्रह है, न ही आख्यान और ब्यौरों का। पात्रों की अंर्तबाह्य दुनिया ही यहां महत्वपूर्ण हैं। इस जीवन को पकड़ना-बांधना ही वस्तुतः 'परजा' का लक्ष्य है। हमेशा की तरह इसमें सब कहीं महान्ती को पूरी सफलता मिली है।

कथा के केंद्र में वैसे तो मुख्यतः शुक्रू जानी का ही परिवार है लेकिन उसके सम्पर्क में आने वाले लोगों के माध्यम से एक तरह से समूचे आदिवासी समाज का एक प्रतिनिधि चित्र यहां उपस्थित है। शुक्रू और उसकी चारों सन्तानों के रूप में इस समाज के संघर्षो, आकांक्षाओं, सपनों, हताशा और अवसाद की विभिन्न स्थितियों का प्रामाणिक और विश्वसनीय अंकन यहां देखा जा सकता है। थोटा गुड़ा का साहूकार राम विशोई यहां काफी कुछ एक खलनायक की भूमिका में है। उससे पैसा लेकर शुक्रू और मांडिया उसके गोती बनते हैं और अपनी जमीन उसके नाम लिख देते हैं। लेकिन अपने सारे दुर्बलताओं के कारण वह हाड़-मांस के एक जीते-जागते इंसान के रूप में अंकित हैं।

शुक्रू परिवार का मुखिया है, बूढा और विधुर। उसकी सारी आशाएं एवं आकांक्षाएं अब उसकी जवान हो चुकी सन्तानों पर केंद्रित हैं। मृत पत्नी सोबारी के प्रति वह बहुत भावुक और संवेदनशील है। वह उसकी स्मृतियों में बसी है और जब-तब सपने में दिखाई देती है। ज़मीन का जो छोटा-सा टुकड़ा उसके पास है उसके प्रति उसे गहरा मोह है। गोती बन जाने की स्थिति में जब मांडिया जमीन साहूकार को बेचकर अपने लोगों की मुक्ति की बात करता है आपा खोकर वह उसे गाली देता है। ज़मीन वापसी के लिए दावा करने पर कपाल पर हाथ मार वह कहता है, 'भूमि तो गई, अब जी कर क्या लाभ ?' (वही, पृ. 297) लड़कियों के प्रति वह बहुत वत्सल और संवेदनशील है। उनके निराश्रित और अकेले होने की स्थिति में जब-तब उनके बारे में सोच कर कुछ वह दुखी होता है। उनके विवाह के लिए झोले की व्यवस्था न कर पाने और लड़कों के लिए बहुएं न जुटाने की पीड़ा उसे गहराई से सालती हैं। ध्वस्त, उपेक्षित और सूने घर में पत्नी सोंबारी की याद उसे अंदर कहीं मथती है - तब यही घर कितना भरा-पूरा और बच्चों की आवाजों से गूंजता था। उसके जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि घर की जिस मर्यादा के लिए उसने अधिकारी से रार मोल ली और इतना सब सहा, फिर भी वह बच नहीं पाती।

मांडिया का सारा जीवन ही इस झंझावत में उखड़ी भूलुंठित बेल की तरह हो जाता है। घर की मर्यादा की खातिर शुक्रू और वह जिस जेल से बचने को गोती बनते हैं अंततः साहूकार की हत्या के बाद वही जेल उसका स्थायी वास बनती है। बंधुआ या गोती होने की पीड़ा क्या होती है, टिकरा से अधिक इसे कौन समझ सकता है ? सिर बेचकर भी बंधुआ को छुट्‌टी नहीं है। बाघेइ जाड़े के मौसम में जब बाघ ज्यादा हमला करता है- में वह साहूकार की भैंसें चराता घूमता है। मेघ भरे मौसम में बाघ का अनदेखा झपट्‌टा उसकी आंखों में भरा होता है फिर भी बाहर का यह जीवन साहूकार के घर में काम करने से कहीं बेहतर है। आंख के सामने रहने पर हर पल वह काम में जोते रहता है। बाहर खतरों के बावजूद प्रकृति की आत्मीय निकटता का सुख जैसे उसके सारे दुखों को हर लेता है। जंगल के सारे खतरों के बीच भी कुछ है जो उसे सुख देता है, 'टिकरा' दुःख नहीं करता। इस जीवन में कष्ट में भी आनंद है। पूरे रास्ते चिड़ियों की किचिर-किचिर! यह अजीब-सा वन का दृश्य ! मोर चुग रहे हैं। भालू चढ़ रहा पहाड़ पर। सियार बिजली की तरह भागा-छूटा जा रहा। हिरन किसी लता की ओट में दिखकर कहीं गायब हो गया। बन मुर्गी बच्चे को खिला रही है। सुअर का झुंड झरने की मिट्‌टी में लोट रहा है। बहुरूपी गिरगिट पोशाक का रंग बदल रहा है। चूहा कत्थई सफेद दागवाली देह में लहराकर इस पेड़ से उस पेड़ पर छलांग भरता है। हवा में गिरते-गिरते ऊपर उठ जाता है।

जंगल का दृश्य। उसमें आंखें थकती नहीं हैं।

भीगी-भीगी सोंधी सी बन की महक। (वही, पृ. 200) अपने विदवस्त परिवार की क्षति-पूर्ति जैसे वह जंगल और उसके पशु-पक्षियों, कीट-पंतगों से करता है और हवा में तिरती उसकी वास उसके नथुनों में घुसकर उसे गहरे नशे में डुबो देती है। उससे अधिक इसे कोई और नहीं जानता कि जंगल का भी एक नशा होता है - मद और महुए की शराब से भी गाढ़ा और मस्त करने वाला।

अधिकारी का संदेश शुक्रू को लाने वाला काव जिली के बारे में उसकी प्रतिक्रिया शुक्रू को बताते हुए कहता है, 'उनका मन है जानी। अब उनका मन। उसने क्या कहा, पता है तुझे ? ...... मक्खन से नरम हाथ-पांव पहाड़ सी छाती, बिजली-सा देह रंग। परजा कुल में ऐसी धांगड़ी हमने कहीं नहीं देखी .... (वही, पृ. 23) किसी स्त्री-विमर्श के बगैर भी वह आदिवासी समाज में स्त्री की स्वच्छंदता और अपने जीवन संबंधी निर्णयों में सक्षम हैं। झमाझम बारिश जैसे पहाड़ के बालू पर कभी नहीं रह पाती, पहाड़ी आदमी के मन पर दुःख भी जमा नहीं हो पाता। बाप के जेल के मुंह से लौटने और गोती बन जाने पर भी अगले दिन जूड़े में रजनी गंधा का फूल

खोंसकर वह धांगड़ी बसाघर जाती है। घर में चूल्हा न जलने की नौबत जब अपनी आहट देती है, दीप्तमनी की खबर पर, अपनी छोटी बहन के साथ, आसाम में सड़क निर्माण के काम में वह मजूरी का निर्णय लेती है। काम पूछने पर वहां समृद्धि का सपना दिखाते हुए वह लड़की उसे बताती है- मिट्टी, बालू ढोना, पानी लाना जैसे काम मजूरी दिन का दो आना महीने के तीन रुपये। घूमने-फिरने की मौज । वहां माडिया का मांड मिलेगा जूड़ा डुबो लो चाहे ऐरंड के तेल में । ढांप दे इतने फूलों का गुच्छा। नहाने का साबुन। वहां न होगा कन्दा, न आम की उबाली हुई गुठली। बागला और कंजौड़ी की बात-बोली भी नहीं। सब कुछ खुला-खुला, मन मर्जी का और ध ांगड़ा भी।

विली और नन्दी वाला की उपस्थिति में देह-मन की अनेक आकांक्षाएं उसे विचलित करती हैं। रात में कभी नींद खुलने पर नन्दीवाला और विली को गायब देख उसे कुछ-कुछ अजीब-सा लगता है। सड़क मरम्मत की बाढ़ में कभी नींद खुलने पर नैतिकता का बांध पूरी तरह टूट गया है। एक अब और गहरा खालीपन उसमें भर गया है। धांगड़ा घर भी वह कम जाती है। उसकी उम्र की कितनी ही लड़कियां आस-पास के गांवों में जाकर मां बन चुकी हैं। रास्ता चलते, किसी सूनी जगह पर, नाक बहते किसी बच्चे को गोद में उठाकर वह प्यार करती है और उसे लालच देती है कि 'मां' कहने पर वह उसे खाजा देगी। उसकी इसी मनः स्थिति का लाभ उठाकर उसी के गांव का मधु घासी उसे डोरिया की कमीज और छाता दिखाकर साहूकार के लिए सौदा करता है। कीमत पूछे जाने पर वह साहूकार से कहती है,' मैं परजा की बेटी हूं। अपनी मर्जी से घर बसांऊगी, मेरी इच्छा से घर टूटेगा। फिर नया घर होगा। मुझे हंसी, फुर्त्ती चाहिए, रुलाई नहीं.... (वही, पृ.210)

थोटा गुड़ा का साहूकार राम विशेई जैसे व्यक्ति होकर भी एक समूचा वर्ग और व्यवस्था है। अकाल और दुष्काल में कन्ध परजा जब उससे कर्ज़ में पुटी भर धान मांगती है , वह गुमास्ते से कहकर उसे जाने का आदेश देता है। इसी तरह और भी तीन जगह लोगों को हाजिरी देनी होती है। अगले वर्ष जब रैयत एक पुटी मूल और आधा पुटी ब्याज लेकर लौटता हैं तो कर्ज के नाम पर उसके आगे चार पुटी चढ़ा मिलता है-साहूकारनी, गोती, गुमास्ता और स्वयं साहूकार से लिए गए कर्ज़ के रूप में। उसके हकबकाने पर घुड़ककर पूछता है- गिन कितना हुआ? उसकी समृद्धि और सम्पन्नता के कारणों को समझाने के लिए एक उदाहरण और है। दम्रू परजा और बहुतों की तरह जो उसका गोती है, खबर लेकर आता है कि उसके भाई सातिया को बाघ ले गया है। उसकी घबराहट और बदहवासी को अनदेखा करता हुआ साहूकार उस पर चीखता है, 'और मेरे कर्ज के रुपये ? अरे सत्यानाशी ! मेरे रुपये डुबो देगा या देगा?' (वही, पृ. 202) फिर विस्तार से वह सारा हिसाब उसे समझाने लगता है, बाघ द्वारा सातिया को ले जाने के बारे में बिना कोई बात किए।

मधु घासी को रुपया देकर बरसाती रात में, शुक्रू परजा के सर सुपदर गांव के धांगड़ा घर में किसी धांगड़ी की प्रतीक्षा में वह बेचैन पड़ा रहता है। पूजा की घंटी हिलाकर चीटियां चिपटी केले के प्रसाद के तौर पर वह बच्चों के आगे उछाल देता है जिसे लूटने को वे ऐसे झपटते हैं जैसे गली में इकट्ठे कुत्ते रोटी का टुकड़ा उछालने पर झपटते हैं। रुपयों से भरी थैली हाथ में लेकर गरीब परजा के लोगों से वह उनकी जमीन का सौदा करता है या निर्जन में खड़ा होकर आती-जाती धांगड़ियों को उनके शरीर की फटी-जर्जर साड़ी दिखाकर उन्हें मनाने-पटाने का खेल खेलता है। शुक्रू जानी की जमीन का पट्टा वह तीस साल का लिखवाकर अंगूठा लगवा लेता है। मर-खपकर जैसे-तैसे रुपये की व्यवस्था करके जब मांडिया अपनी ज़मीन वापस मांगता है, वह उन लोगों को कानून की बारीकियां समझाता है। वह ठोकरें मारकर उन्हें गालियां ही नहीं देता, जिली की तरह विली को भी उससे ब्याहने की बात कहता है। उसका दानव यौवन आदमी की कमजोरी स्वीकार नहीं करता। जिली के फेर में पड़कर उसने इस बीच न नई जमीन गिरवी रखी है न ही उसके बधुंआ बढ़े हैं। उसका विश्वास है - पराया हित साधने को वह जिस दिन खड़ा हो जायेगा, वह बूढ़ा हो जायेगा। जिली से ब्याह करके न वह झोले के रुपये देता है, न ही यह संबंध उसे कहीं कमजोर करता है। सम्पत्ति और समृद्धि के नशे में उसकी मानवीय संवेदना पूरी तरह जड़ हो चुकी है। हताशा और असहाय क्रोध की स्थिति में मांडिया जानी कुल्हाड़ी से उसकी हत्या करके शुक्रू के साथ स्वयं ही पुलिस चौकी पहुंचकर अपना जुर्म कुबूल कर लेता है।

आदिवासी समाज की विपन्नता शोषण और संघर्ष के बीच उस समाज की उत्सवप्रिय और आनंदी प्रवृत्ति उपन्यास में गहराई से विन्यस्त है। उनके पर्व और त्यौहार जैसे उनकी प्रतिरोध-चेतना का एक अनिवार्य घटक हैं। अवसाद और उदासी उनके लिए सबसे बड़ा सच है। जो कंजौड़ी जिली के भाई मांडिया की वाग्दत्ता थी उसके गोती बन जाने से बागला उसे जिली की आंखों के सामने ही उठाकर एक ओर भागता चला जाता है- वही बागला जिसने न जाने कितनी रातें जिली की खातिर धांगड़ा-घर में काटी है।

आदिवासी समाज के रीति-रिवाजों के ब्यौरे भी उपन्यास में विस्तार से अंकित है। उस समाज में ब्याह की रस्म को कंजोड़ी और बागला की शादी के प्रसंग में देखा जा सकता है। बूढ़े दिशारी द्वारा देवता के आव्हान और रेंगू द्वारा कुछ दूसरे अनुष्ठानों के बाद का दृश्य है, 'कंजोड़ी और बागला को हल्दी पानी में पीलाकर गांव वाले झरने के किनारे दूर चले गए। जहां दो झरने मिलते है, वहीं दोनों को खड़ा करके इसको सिर का एरंड़ तेल उसके सिर, उसके सिरका एरंड़ तेल इसके सिर मल दिया। बांगला ने कंजोड़ी के बायें पैर को दाहिने पैर से दबाकर उसके मुंह में तीन बार थूका। कंजोड़ी ने भी वैसा ही किया। अब गले की माला हाथ की मुंदरी अदला-बदला की । पहनी गई साड़ी के छोर पर गांठ लगी, दोनों को नहलाया। घाट पर दिशारी ने राह पूजा की। मुर्गी का अंडा फोड़ा गया.... '(वही, पृ.134) इसी तरह आगे भी विस्तार और विधि-विधान से सारी कारवाई की जाती है।

गोपीनाथ महान्ती आदिवासी समाज का हिस्सा नहीं थे। अपनी सरकारी नौकरी के दौरान इस जीवन को उन्होंने गहरी आत्मीयता और सहानुभूति के साथ देखा था। रचनात्मक अर्थ में उस समाज का 'हिस्सा' बनकर ही । वे जमींदार और अधिकारी तबके के व्यक्ति थे। लेकिन इन दोनों द्वारा आदिवासियों पर किए जाने वाले अत्याचारों, भ्रष्टाचार और शोषण के चित्र उन्होंने गहरी वस्तुपरकता से अंकित किए हैं। उनकी विश्वसनीयता और प्रामाणिकता का कारण वस्तुतः उनकी यही वस्तुपरकता हैं। एक लेखक के रूप में इसे कभी नहीं भूलते कि उन्हें किसके साथ रहना और खड़ा होना है। आदिवासी जीवन की जटिलताएं, उसका संघर्ष और संताप, उसका राग-रंग, स्पर्धा-द्वेष, क्रोध-आवेश सब कुछ उन्होंने बहुत निकटता से देखा था, उसी समाज में गहराई से रमकर। उनके प्रसंग में यह सवाल कभी नहीं उठा कि आदि समाज और जीवन पर उन्होंने एक बाहरी व्यक्ति की तरह लिखा है। 'स्वानुभूति' और 'सहानुभूति' का अंतर जैसे वहां पिघलकर गल जाता है। अपनी सीमाओं के बीच इसी परम्परा का विस्तार महाश्वेता देवी में देखा जा सकता है।

हिंदी में आदिवासी जीवन और परिक्षेत्रों पर अच्छा-बुरा जिन लोगों ने लिखा है, वे सब गैर आदिवासी क्षेत्र से आए लेखक हैं। राजेन्द्र अवस्थी, योगेन्द्र नाथ सिन्हा, श्री प्रकाश मिश्र, संजीव, तेजिन्दर, राकेश कुमार सिंह, रणेन्द्र आदि ऐसे ही लेखक हैं। इस बंजर और पपड़ायी पड़ी धरती पर अब उसी समाज से आए निर्मला पुतुल और अनुज लुगुन जैसे लेखकों के अंकुर फूट रहे हैं। इन अंकुरों में ही किसी बड़ी और सघन फ़सल के संकेत पढ़े जा सकते हैं।

❑❑

372, छोटी बमनपुरी
बरेली-243003
मो. 093119838309